तपस्या में बाधक - सूक्ष्म कामनाएं और दुर्भावनाएं

''मेरे से निरंतर योग-युक्त कैसे रहो'' - भगवान ने स्वयं ही सिखाया। इस योग की ही निरंतर व शक्तिशाली स्थिति तपस्या कहलाती है। तपस्या अर्थात् जिसमें तप कर आत्मा निखर जाए। इस तपस्या के लिए मनुष्य को अनेक बातों का, अनेक विचारों का, अनेक वृत्तियों का, और अनेक कर्मों का भी त्याग होता है।

तपस्या अर्थात् योगाग्नि में सदा ही तपते रहना। यह अग्नि होते हुए भी चित्त को शीतल करती है। इस अग्नि से पाप कर्मों का कूड़ा करकट जलकर भस्म हो जाता है। यही वह योग-अग्नि है जिसके लिए प्रसिद्ध है कि 'रुद्र ज्ञान यज्ञ' से विनाश ज्वाला प्रकट हुई। अर्थात् योग की ज्वाला से पाप और पापी दोनों ही नष्ट हो जाते हैं।

'घोर तपस्या का अंतिम वर्ष', इसमें भी यदि हम चूक गये, तो यह वरदान का समय यों ही निकल जायेगा। तो हमें स्वयं से पूछना है कि हम अच्छे से अच्छा क्या कर सकते हैं और हम क्या कर रहे हैं? तपस्वी स्वरूप में हमें यह स्पष्ट आभास होता है कि शांति व शक्ति की किरणें हमसे चारों ओर प्रवाहित हो रही हैं। अब हम देखते हैं ऐसी सूक्ष्म तपस्या में सूक्ष्म बाधाएं क्या है।

सूक्ष्म कामनाएं - यों तो संसार में रहते हुए आवश्यक इच्छाएं मन में उठती ही हैं, इच्छाओं के बिना तो जीवन का एक भी क्षण नहीं बीतता, परन्तु मानव मन में अनेक अनावश्यक व सूक्ष्म इच्छाएं उठकर योग अभ्यास में बाधा उत्पन्न करती हैं। इन्हीं सूक्ष्म कामनाओं को परख कर हमें समाप्त करना है।

एक तपस्वी पथिक के लिए कंटीली तारों के समान ये सूक्ष्म भौतिक कामनाएं मन का ध्यान बटाए रखती हैं। इनसे दुखों का जन्म होता है और स्वाभिमान का नाश। और ज्यों-ज्यों अध्यात्म पथ पर राही उन्नति की ओर बढ़ता है, सूक्ष्म कामनाएं उसे चारों ओर से घेरने लगती हैं, और यह कामनाओं की वृद्धि तपस्या को कठिन बनाने लगती है। क्या है यह सूक्ष्म कामनाएं...? मान-शान व महिमा की कामना, देखने सुनने व बोलने की कामना खाने-पीने व पहनने की कामना, दैहिक रसों की कामना, दूसरों के प्यारे बनने की कामना, दूसरों की नजरों में आने की कामना, सांसारिक पदार्थों की इच्छा आदि-आदि कर्मेन्द्रियों के सूक्ष्म रसों की इच्छाएं योगी के पथ में बाधक हैं। वास्तव में इन सबका सच्चा संन्यासी ही सच्चा तपस्वी बन सकता है। अर्थात् जो सदा ही संतुष्ट है। जिसे न कोई इच्छा है न शौक है, जो ईश्वरीय प्राप्तियों में मग्न हैं वही तपस्वी बनने का अधिकारी है।

कामनाओं का मूल - काम - कामना शब्द का निर्माण काम से ही हुआ है। कामना = काम + ना अर्थात् जहां काम नहीं होगा, वहां कोई कामना नहीं होगी। सोचने की बात है कि जिसने काम जैसे भौतिक सुखों का त्याग कर दिया, वह और कहां सुख ढूंढेगा। कामनाओं की होड़ मनुष्य को पुन: काम की ओर प्रेरित करती है क्योंकि काम की सूक्ष्म कामना मन को अतृप्त करती है और फलत: मनुष्य तृप्ति के लिए कामनाओं के पीछे दौड़ता है। वास्तव में जो योगी काम पर विजय प्राप्त कर लेता है, उसे असीम आत्मिक सुख की प्राप्ति होने से कामनाओं की अविद्या हो जाती है।

क्या अभौतिक आत्मा भौतिक साधनों से संतुष्ट होगी? - आज मनुष्य कामनाओं का गुलाम होकर जितना उनके पीछे दौड़ रहा है उतना ही अशांति का आह्वान कर रहा है। सत्यता यही है कि भौतिक प्राप्तियों से आत्मा तृप्त नहीं होती। आत्मा की क्या प्यास है - इसे हम महसूस करें और उसकी तृप्ति स्थूल प्राप्तियों से नहीं होती - यही सबका अनुभव है।

अध्यात्म पथ पर जब भौतिकता की प्राप्ति अधिक होने लगती है, तो यदि हम उसे स्वयं के लिए प्रयोग करने में लग गये तो उसका लगा हुआ रस, तीव्रता से ईश्वरीय रस को समाप्त कर देगा। इसलिए सत्य तो यही है कि भौतिकता, तपस्या के लिए अभिशाप है। भौतिक सम्पन्नता होते हुए तपस्वी बनना यह एक अत्यन्त अनासक्त आत्मा ही कर सकती है। अन्यथा शेष सभी भौतिकता की लहर में तपस्या को भी बहा देते हैं।

कामना सामना नहीं करने देती - कामनाएं मन की शक्ति को क्षीण करके अनेक समस्याओं को जन्म देती हैं। कामना-युक्त मनुष्य अपने व दूसरों के मार्ग में अनेक बाधाएं खड़ी कर देता है, इससे मन धीरे-धीरे कमजोर होने लगता है। फलस्वरूप कमजोर मन माया के सूक्ष्म वार का सामना नहीं कर पाता। जो निष्काम है वह मानो राजा की तरह बलवान है, जिस पर माया शत्रू यदि वार भी करती है तो उसे सदा ही मुंह की खानी पड़ती है।

> **अध्यात्म पथ पर जब भौतिकता की प्राप्ति अधिक होने लगती है, तो यदि हम उसे स्वयं के लिए प्रयोग करने में लग गये तो उसका लगा हुआ रस, तीव्रता से ईश्वरीय रस को समाप्त कर देगा। इसलिए सत्य तो यही है कि भौतिकता, तपस्या के लिए अभिशाप है। भौतिक सम्पन्नता होते हुए तपस्वी बनना यह एक अत्यन्त अनासक्त आत्मा ही कर सकती है।**

मान की कामना - तपस्वी की कुरुपता - मान-शान एक ऐसी मीठी माया है जिसके अधीन प्राय: सभी मनुष्य हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों योगी आगे बढ़ता है, यह माया भी रॉयल रूप में सामना करती है। एक त्यागी पुरुष या गुप्त तपस्वी या गुप्त सेवाधारी, जब दूसरों की महिमा प्रत्यक्ष-फल के रूप में प्राप्त होते देखता है तो उसका भी मन रूपी सिंहासन डोलने लगता है और वह यही सोचने लगता है कि हमें तो कोई जानता भी नहीं, शायद यह मान-शान ही सच्ची प्राप्ति है। परन्तु जब मनुष्य को मान मिल जाता है तो वह पाता है कि तो भी आत्मा संतुष्ट नहीं हुई।

परन्तु मान को स्वीकार करने से अहं का जन्म होता है जो आन्तरिक सुख को चुराने लगता है। यह सत्य है कि संगमयुग पर महिमा होना श्रेष्ठ भाग्य की निशानी है और मनुष्य को सदा महिमा युक्त कार्य करने चाहिए। परन्तु एक सच्चे तपस्वी को मान के पीछे नहीं भागना चाहिए अथवा इस सूक्ष्म कामना से तपस्या को नष्ट नहीं करना चाहिए। कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो महिमा न चाहता हो, परन्तु महिमा हमारे श्रेष्ठ स्वरूप की हो व उसमें सत्यता हो।

इस विश्व में सबसे अधिक महिमा परमात्मा की है, सभी उनका मुक्त कंठ से यश गान करते हैं परंतु क्या उनके मन में मान की कामना है? या स्वत: ही उनकी महिमा का प्रकाश, सूर्य के प्रकाश की तरह चारों ओर फैल रहा है जिसे कोई भी काले बादल ढक नहीं सकते। वास्तव में मान की कामना भिखारीपन है व मान का त्याग महादानी-पन।

महिमा का भोग लगा दो - ईश्वरीय महावाक्य है कि तुम बच्चे इस धरा पर सूर्य तुल्य हो और ये मान-शान है दीपकों के समान। तो तुम इन दीपकों से स्वयं को प्रकाशित करने का संकल्प न करो। स्वमान में रहो तो मान परछाई की तरह सदा ही तुम्हारे साथ रहेगा। तो इतने श्रेष्ठ स्वभाव में रहने वाले तपस्वी को इन दीपकों के प्रकाश में भटक नहीं जाना चाहिए। योगियों को तो लाइट हाउस बनकर अंधकार में भटकते हुए विश्व को प्रकाश देना है। और जब भी मान-शान के अनेक दीपक प्राप्त हों तो अपने ज्ञान-सूर्य परमपिता को उनका भोग लगा दो। यदि आप सूर्य-सम-तेजस्वी तपस्वी भी इन दीपकों के पीछे ही दौड़ते रहे तो आपका सम्पूर्ण तेज भी सिमट कर दीपक समान ही रह जायेगा।

इसलिए महिमा सुनकर फूल नहीं जाओ। दूसरों को मान दो, दूसरों को आगे बढ़ाओ और अपने मन में सर्वश्रेष्ठ शुभ-भावनाओं के बीज आरोपित करो। जैसे मैं सम्पूर्ण बनकर शीघ्र ही परमपिता को प्रत्यक्ष करूं.. मैं सर्व प्रथम सम्पूर्ण बनूं... मैं विश्व के आगे आदर्श प्रस्तुत करूं... मैं विजयी रत्न बनूं... आदि-आदि।

दुर्भावनाएं-दुर्गति का पथ - सदा शिव के बच्चे भी यदि दूसरों के लिए बुरी भावनाएं रखें तो विश्व का कल्याण कौन करेगा तथा आत्माओं को अपनी शुभ-भावनाओं का बल कौन देगा! एक तपस्वी, सच्ची योग अग्नि तब ही प्रज्ज्वलित कर सकता है जब उसके मन की दुर्भावनाओं की अग्नि भस्म हो चुकी हो। बुरी भावनाएं मन को जलाती हैं और बुद्धि को दूषित करती हैं।

दूसरों के लिए कुदृष्टि रखना, बुरे विचार रखना शत्रुता का भाव रखना, बदले की भावना रखना, ईर्ष्या भाव रखना, नीचा दिखाने या गिराने की भावना रखना, असहयोग, अकल्याण या विघ्न डालने की भावना रखना - ये सभी दुर्भावनाएं हैं जो पहले तो स्वयं को ही दुर्गति के मार्ग पर खींच ले जाती है। क्योंकि तपस्वी की तपस्या का बल वास्तव में तो इन्हीं भावनाओं के कारण नष्ट भी हो जाता है।

इस प्रकार दुर्भावनाओं से परमार्थ भी बिगड़ते हैं और व्यवहार भी, सम्बन्ध भी

- शेष भाग पृष्ठ 11 पर

नैरोबी। 'मम्मा डे' के अवसर पर नेशनल पार्क में आयोजित कार्यक्रम में भाग लेने वाले प्रतिभागी।

जीवन को खंडित....

पृष्ठ 2 का शेष

मानव परिवार, समाज, संस्था, देश और दुनिया के साथ शिकायत या फरियाद का संबंध रखता है।

इसलिए खुद को क्या मिला, उसे ज्यादा खुद को क्या नहीं मिला उनकी चिंता करता रहता है। मानव स्वभाव के स्वार्थी है। इसलिए हर एक चीज को स्वयं के दृष्टिकोण से मूल्य करता है। ऐसा दृष्टिकोण सर्वांगी नहीं लेकिन एकांगी होता है। इसलिए उनका मूल्य तटस्थ और विशुद्ध नहीं होता।

बाह्य व्यक्ति कोई छोटासा काम करके आता तब हम उसे शब्दों से थैक्यूं अभिव्यक्त कर समाते नहीं हैं, लेकिन जब घर के लोग, सगे सम्बन्धी आदी का कितना उपकार हमारे साथ होता है, जिसकी सुध तक हम नहीं लेते। उसका कारण है कि खुद के लोगों के सामने हम नम्रता दिखाने में हम छोटे हो जाने की मानसिकता से ग्रसित होते हैं। इंसान के साथ ही नहीं लेकिन भगवान के साथ का सम्बन्ध भी भय के साथ रहता है। नहीं पूजेंगे तो नाराज हो जायेंगे, दु:ख के समय मदद नहीं करेगा, ऐसा भय हमें छोड़ता नहीं! ईश्वर तो चाहते हैं आप सम्पूर्ण रहें लेकिन हम ही स्वयं को खंडित-विखंडित करते रहते हैं। जीवन को बचाना है तो यह है आठ उपयुक्त बातें :-

1. मन में श्रद्धा रखो कि मुझे कोई दु:खी कर नहीं सकता। मैं मिट्टी का पूतला नहीं हूँ, फौलाद की प्रतिमा हूँ।

2. मुझे कोई सम्बन्ध न ही खरीदना है या न ही बेचना है, और न ही तराजू पे तोलना है। मैं सम्बन्ध की शान को संभालने के लिए हूँ, सन्मुख व्यक्ति की भले ही मुक्त रहें।

3. मैं मेरी आत्मशक्ति को विकसित करूंगा। समय-समय पर उनकी कसौटी करता रहूंगा। मैं विचार-सागर मंथन कर संकोच, भय, ग्लानि, शोक और द्वेष के विष को खत्म कर दूंगा।

4. मुझसे सबको खुशी मिले यही शुभ भाव रखूंगा।

5. मैं भीतर से मुस्कुराता रहूंगा क्योंकि मुझे निर्मल रहना है।

6. मुझे बाहर की अमीरी के साथ-साथ मुझे अंदर से भी अमीर बनना है।

7. तन को स्वस्थ रखने के साथ मन को स्वस्थ रखना ये मेरे जीवन की प्राथमिकता रहेगी।

8. नियमित रूप से हर सुबह मन में सुंदर श्रेष्ठ, शुभ संकल्पों से पल्लवित करता रहूंगा।

न्याय के लिए आस्था....

पृष्ठ 1 का शेष

जिससे मनुष्य में अपराध करने की भावना बढ़ती जा रही है। आयकर आयुक्त एम.एन.मौर्या ने कहा कि मूल्यों के पतन की रोकथाम को अनावश्यक इच्छाओं पर विराम लगाकर स्वयं की अंतर्निहित शक्तियों को जागृत करने के लिए इस संस्था द्वारा सिखाया जा रहा राजयोग मेडिटेशन सुखद जीवन जीने का मार्ग प्रशस्त करता है। मुम्बई विश्वविद्यालय के लॉ विभाग के अध्यक्ष डॉ.रश्मि ओझा ने कहा कि किसी को दु:ख देना, बदला लेने जैसी भावना रखना श्रेष्ठ व संस्कारवान मनुष्य के लक्षण नहीं हैं। वरिष्ठ राजयोग शिक्षिका ब्र.कु.शीलू ने कहा कि आध्यात्मिक मूल्यों से सम्पन्न शीघ्र ही ऐसा संसार निर्मित होने वाला है जहां का हर कार्य विधि एवं नियमानुसार संचालित होगा। पारदर्शिता, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, श्रेष्ठ समाज के मूल तत्व माने जाते हैं। न्यायविद प्रभाग के राष्ट्रीय संयोजक ब्र.कु.जयप्रकाश शर्मा ने कहा कि न्यायविदों को अनुशासन एवं आदर्श आचरण प्रस्तुत करना चाहिए जो कि समाज के लिए प्रेरणास्रोत बन सके।

इस सम्मेलन को ब्र.कु.पुष्पा, एडवोकेट लता अग्रवाल, एडवोकेट अमरसिंह सहित अनेक वक्ताओं ने सम्बोधित किया।